कोरोना काल में राजिंदर सिंह बेदी का “क्वारंटीन”

हिन्दी और उर्दू के मशहूर लेखक कथाकार राजिंदर सिंह बेदी ने 1940 में प्लेग महामारी को लेकर कहानी लिखी थी “क्वारंटीन”, जिसे आज कोरोना के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए। पढ़ते हुए आप ख़ुद कहेंगे कि ये तो आज की ही कहानी है। उर्दू में छपी इस कहानी का हिन्दी में अनुवाद संजीव कुमार और डॉ. जिया उल हक़ ने मिलकर किया है।

“क्वारंटीन”

हिमालय के पाँव में लेटे हुए मैदानों पर फैल कर हर एक चीज़ को धुंधला बना देने वाले कोहरे की तरह प्लेग के ख़ौफ़ ने चारों तरफ़ अपना क़ब्ज़ा जमा लिया था। शहर का बच्चा बच्चा उसका नाम सुन कर काँप जाता था।

प्लेग तो ख़ौफ़नाक था ही, मगर क्वारंटीन उससे भी ज़्यादा ख़ौफ़नाक था। लोग प्लेग से इतने हैरान-परेशान नहीं थे जितने क्वारंटीन से, और यही वजह थी कि स्वास्थ्य विभाग ने शहरियों को चूहों से बचने की सलाह देने के लिए जो आदमी के क़द के बराबर इश्तिहार छपवाकर दरवाज़ों, और सड़क-चौराहों पर लगाया था, उसपर “न चूहा न प्लेग” के नारे को और बढ़ाते हुए “न चूहा न प्लेग”, के साथ “न क्वारंटीन” भी लिख दिया था।

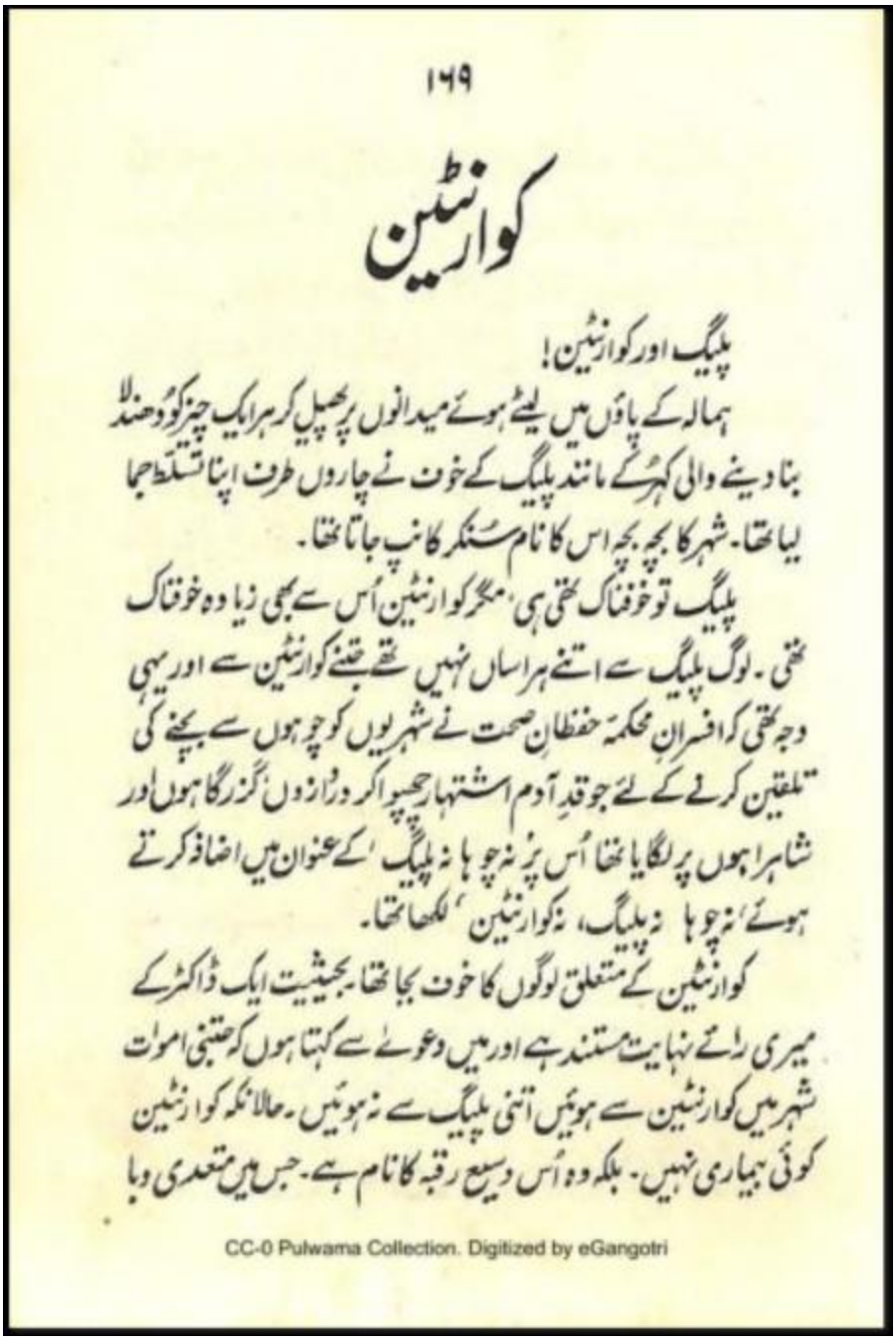

۱۶۹

کوارنٹین

پلیگ اور کوارنٹین!

ہمالہ کے پاؤں میں لیٹے ہوئے میدانوں پر پھیل کر ہر ایک چیز کو دُھندلا بنا دینے والی کہر کے مانند پلیگ کے خوف نے چاروں طرف اپنا تسلط جما لیا تھا۔ شہر کا بچہ بچہ اس کا نام سُنکر کانپ جاتا تھا۔

پلیگ تو خوفناک تھی ہی، مگر کوارنٹین اُس سے بھی زیادہ خوفناک تھی۔ لوگ پلیگ سے اتنے ہراساں نہیں تھے جتنے کوارنٹین سے اور یہی وجہ تھی کہ افسرانِ محکمۂ حفظانِ صحت نے شہریوں کو چوہوں سے بچنے کی تلقین کرنے کے لئے جو قدِ آدم اشتہار چسپاں کر دروازوں، گزرگاہوں اور شاہراہوں پر لگایا تھا اُس پر نہ چوہا نہ پلیگ کے عنوان میں اضافہ کرتے ہوئے 'نہ چوہا نہ پلیگ، نہ کوارنٹین' لکھا تھا۔

کوارنٹین کے متعلق لوگوں کا خوف بجا تھا۔ بحیثیت ایک ڈاکٹر کے میری رائے نہایت مستند ہے اور میں دعوے سے کہتا ہوں کہ جتنی اموات شہر میں کوارنٹین سے ہوئیں اتنی پلیگ سے نہ ہوئیں۔ حالانکہ کوارنٹین کوئی بیماری نہیں۔ بلکہ وہ اُس وسیع رقبہ کا نام ہے۔ جس میں متعدی وبا

CC-0 Pulwama Collection. Digitized by eGangotri

क्वारंटीन के सम्बंध में लोगों का ख़ौफ़ वाजिब था। एक डॉक्टर होने के नाते इस विषय में मेरी राय पक्की है और मैं दावे से कहता हूँ कि जितनी मौतें शहर में क्वारंटीन से हुईं, इतनी प्लेग से न हुईं, हालाँकि क्वारंटीन कोई बीमारी नहीं, बल्कि वो उस बड़ी इमारत का नाम है जिसमें महामारी के दिनों में बीमार लोगों को तंदुरुस्त इंसानों से कानूनन अलग करके रखा जाता हैं ताकि बीमारी बढ़ने न पाए।

हालाँकि क्वारंटीन में डाक्टरों और नर्सों का काफ़ी इंतिज़ाम था, फिर भी मरीज़ों की संख्या बढ़ जाने पर हर मरीज़ का अलग अलग ध्यान नहीं रखा जा सकता था। अपने रिश्तेदारों को अपने क़रीब न होने से मैंने बहुत से मरीज़ों को अपना हौसला खोते हुए देखा। कई मरीज़ तो अपने आसपास लोगों को एक के बाद एक मरते देख कर मरने से पहले ही मर गये। कभी कभी तो ऐसा हुआ कि कोई मामूली तौर पर बीमार आदमी वहाँ की महामारी वाले माहौल के कारण ही दम तोड़ दिया और ज़्यादा मौत होने की वजह से मृत शरीर का आख़िरी क्रिया-कर्म भी क्वारंटीन के नियम क़ानून के हिसाब से ही होता था, यानी सड़कों पर पड़ी लाशों को मुर्दा कुत्तों की लाशों की तरह घसीट कर एक बड़े ढेर की सूरत में जमा किया जाता और बग़ैर किसी के धार्मिक नियम और रस्म पूरा किए, पेट्रोल डाल कर सबको आग के हवाले कर दिया जाता और शाम के वक़्त जब डूबते हुए सूरज की लालिमा के साथ जलती लाशों की लाल लाल लपटें उठती तो दूसरे मरीज़ यही समझते कि तमाम दुनिया को आग लग रही है।

क्वारंटीन के कारण मौतें इसलिए भी ज़्यादा हुई क्यूँकि जब भी किसी के अंदर बीमारी के लक्षण दिखने शुरू होते तो मरीज़ के परिवार वाले मरीज़ को छुपाने लगते, ताकि कहीं मरीज़ को ज़बरदस्ती क्वारंटीन में न लेकर चले जाएँ। चूँकि हर एक डाक्टर को निर्देश दिया गया था कि मरीज़ की ख़बर मिले तो फ़ौरन ख़बर करे, इसलिए लोग डॉक्टरों से इलाज भी न कराते और किसी घर में महामारी होने का पता सिर्फ़ उसी वक़्त चलता, जब उस घर से रोने की आवाज़ और लाश निकलती थी।

उन दिनों मैं क्वारंटीन में बतौर एक डॉक्टर के काम कर रहा था। प्लेग का ख़ौफ़ मेरे दिल-ओ-दिमाग़ पर भी हावी था। शाम को घर आने पर मैं एक अरसे तक कार्बोलिक साबुन से हाथ धोता रहता और एक अन्य दवा से ग़रारे करता, या पेट को जला देने वाली गर्म काफ़ी या ब्रांडी पी लेता। हालाँकि उससे मुझे अनिद्रा और आँखों के चौंधेपन की शिकायत पैदा हो गई। कई दफ़ा बीमारी के ख़ौफ़ से मैंने उल्टी वाली दवाएं खा कर अपनी तबीअत को साफ़ किया। जब बहुत गर्म काफ़ी या ब्रांडी पीने से पेट में जलन होने लगती और बुख़ार उठ उठ कर दिमाग़ तक पहुँच जाता, तो मैं अक्सर एक होशमंद इंसान की तरह अलग अलग क़यास लगाने लगता। गले में ज़रा भी ख़राश महसूस होती तो मैं समझता कि प्लेग के लक्षण दिखने शुरू हो गए हैं,... उफ़! मैं भी इस जानलेवा बीमारी का शिकार हो जाऊँगा... प्लेग! और फिर... क्वारंटीन!

उन्हीं दिनों में विलियम भागू ख़ाकरूब, जो नया नया ईसाई बना था और मेरी गली में सफ़ाई का काम किया करता था, मेरे पास आया और बोला, “बाबूजी... ग़ज़ब हो गया। आज अम्बोलेंस मोहल्ले के क़रीब से बीस और एक बीमार ले गई है।”

“इक्कीस? एम्बूलेंस में...?” मैं ने ताज्जुब करते हुए ये अलफ़ाज़ कहे।

“जी हाँ... पूरे बीस और एक...उन्हें भी क्विंटन (क्वारंटीन) ले जाएँगे... आह! वो बे-चारे कभी वापस न आएँगे?”

थोड़ी छानबीन करने पर मुझे पता चला कि भागू रात के तीन बजे उठता है। आध पाव शराब चढ़ा लेता है और फिर निर्देश के अनुसार कमेटी की गलियों में और नालियों में चूना बिखेरना शुरू कर देता है, ताकि महामारी फैलने न पाएँ। भागू ने मुझे बताया कि उसके तीन बजे उठने का ये भी मतलब है कि बाज़ार में पड़ी हुई लाशों को इकट्ठा करे और उस मोहल्ले में जहाँ वो काम करता है, उन लोगों के छोटे मोटे काम काज करे जो बीमारी के ख़ौफ़ घर के से बाहर नहीं निकलते। भागू तो बीमारी से ज़रा भी नहीं डरता था। उसका ख़याल था अगर मौत आई हो तो चाहे वो कहीं भी चला जाए, बच नहीं सकता।

उन दिनों जब कोई किसी के पास नहीं फटकता था, भागू सर और मुँह पर कपड़ा बाँधे बिना डरे लोगों की सेवा कर रहा था। हालाँकि वो पढ़ा लिखा नहीं था, लेकिन अपने तजुर्बों से वो एक जानकर की तरह लोगों को बीमारी से बचने की तरकीबें बताता फिरता था। आम सफ़ाई, चूना बिखेरने और घर से बाहर न निकलने की सलाह देता था। एक दिन मैंने उसे लोगों को ज़्यादा शराब पीने का सलाह देते हुए भी देखा। उस दिन जब वो मेरे पास आया तो मैं ने पूछा, “भागू तुम्हें प्लेग से डर भी नहीं लगता?”

“नहीं बाबूजी... मेरा बाल भी बाँका नहीं होगा। आप इत्ते बड़े हकीम ठहरे, हज़ारों मरीज़ आपके हाथ से सही होकर गए। मगर जब मेरी बारी आएगी तो आपका भी दवा-दारू कुछ असर नहीं करेगा... हाँ बाबूजी... आप बुरा न मानें। मैं ठीक और साफ़ साफ़ कह रहा हूँ।" और फिर गुफ़्तगु का रुख बदलते हुए बोला, "कुछ कोन्टीन की कहिए बाबूजी... कोन्टीन की।”

“वहाँ क्वारंटीन में हज़ारों मरीज़ आ गए हैं। हम जितना सम्भव हो सके उनका इलाज करते हैं। मगर कहाँ तक, मेरे साथ काम करने वाले लोग भी ज़्यादा देर मरीज़ों के पास रहने से घबराते हैं। ख़ौफ़ से उनके गले और लब सूखे रहते हैं। फिर तुम्हारी तरह कोई मरीज़ के मुँह के साथ मुंह नहीं जा लगाता। न कोई तुम्हारी तरह इतनी जान मारता है... भागू! ख़ुदा तुम्हारा भला करे। जो तुम इंसानों की इस क़दर ख़िदमत करते हो।”

भागू ने गर्दन झुका दी और गमछा के एक पल्लू को मुँह पर से हटा कर शराब के असर से लाल हो चुके चेहरे को दिखाते हुए बोला, "बाबूजी, मैं किस लायक़ हूँ। मुझसे किसी का भला हो जाए, मेरा ये निकम्मा तन किसी के काम आ जाए, इससे ज़्यादा ख़ुशक़िस्मती और क्या हो सकती है। बाबूजी बड़े पादरी लाबे (रेवरेंड मोनित लाम, आबे) जो हमारे मुहल्लों में अक्सर परचार के लिए आया करते हैं, कहते हैं, परमेश्वर इशा मसीह यही सिखाता है कि बीमार की मदद में अपनी जान तक लड़ा दो... मैं समझता हूँ...”

मैंने भागू की हिम्मत को सराहना चाहा, मगर भावुकता से मैं रुक गया। उसके आत्मविश्वास और अमली ज़िंदगी को देख कर मेरे दिल में एक जज़्बा पैदा हुआ। मैंने दिल में फ़ैसला किया कि आज क्वारंटीन में पूरी लगन से काम कर के बहुत से मरीज़ों को ज़िंदा रखने की कोशिश करूँगा। उनको आराम पहुँचाने में अपनी जान तक लड़ा दूँगा। मगर कहने और करने में बहुत फ़र्क़ होता है। क्वारंटीन में पहुँच कर जब मैंने मरीज़ों की ख़ौफ़नाक हालत देखी और उनके मुँह से निकली छींक मेरे नथुनों तक पहुँची, तो मेरी रूह काँप गई और भागू की बराबरी करने की हिम्मत न पड़ी।

फिर भी उस दिन भागू को साथ ले कर मैंने क्वारंटीन में बहुत काम किया। जो काम मरीज़ के ज़्यादा क़रीब रह कर हो सकता था, वो मैंने भागू से कराया और उसने बेग़ैर हिचकिचाए हुए किया... ख़ुद मैं मरीज़ों से दूर दूर ही रहता, इसलिए कि मैं मौत से बहुत डरा हुआ था और इससे भी ज़्यादा क्वारंटीन से।

मगर क्या भागू मौत और क्वारंटीन, दोनों से परे था?

उस दिन क्वारंटीन में चार-सौ के क़रीब मरीज़ दाख़िल हुए और अढ़ाई सौ के लगभग मौत के मुहँ में चले गए!

ये भागू की जाँबाज़ी का ही नतीजा था कि मैंने बहुत से मरीज़ों को ठीक किया। वो नक़्शा जो मरीज़ों के स्वस्थ्य होने की रफ़्तार का औसत दिखाने के लिए चीफ़ मेडिकल ऑफीसर के कमरे में टंगा था, उसमें मेरे अंतर्गत में रखे हुए मरीज़ों की औसत सेहत की लकीर सबसे ऊँची चढ़ी हुई दिखाई देती थी। मैं हर-रोज़ किसी न किसी बहाने से उस कमरे में चला जाता और उस लकीर को सौ फ़ीसदी की तरफ़ ऊपर ही ऊपर बढ़ते देख कर दिल में बहुत ख़ुश होता।

एक दिन मैंने ब्रांडी ज़रूरत से ज़्यादा पी ली। मेरा दिल धक धक करने लगा। नब्ज़ घोड़े की तरह दौड़ने लगी और मैं एक पागल की तरह इधर उधर भागने लगा। मुझे ख़ुद शक होने लगा कि प्लेग के कीड़े ने मुझ पर आख़िरकार अपना असर कर ही दिया है और बहुत जल्द ही गिलटियाँ मेरे गले या जाँघों पर दिखने लगेगी। मैं बहुत घबरा गया। उस दिन मैंने क्वारंटीन से भाग जाना चाहा। जितना देर भी मैं वहाँ ठहरा, ख़ौफ़ से काँपता रहा। उस दिन मैं भागू को सिर्फ़ दो मर्तबा ही देख पाया।

दोपहर के क़रीब मैंने उसे एक मरीज़ से लिपटे हुए देखा। वो बहुत ही प्यार से उसके हाथों को थपक रहा था। मरीज़ में जितनी भी ताक़त थी उससे पकड़ते हुए उसने कहा, “भई अल्लाह ही मालिक है। इस जगह तो ख़ुदा दुश्मन को भी न लाए। मेरी दो लड़कियाँ..."

भागू ने उसकी बात को काटते हुए कहा, “परमेश्वर इशा मसीह का शुक्र करो भाई... तुम तो अच्छे दिखाई देते हो।”

“हाँ भाई शुक्र है ख़ुदा का... पहले से कुछ अच्छा ही हूँ। अगर मैं क्वारंटीन...”

अभी ये शब्द उसके मुंह में ही थे कि उसकी नसें खिंच गईं। उसके मुँह से कफ़ आने लगा। आँखें पथरा गईं। कई झटके आए और वो मरीज़, जो एक लम्हे पहले सबको अच्छा दिखाई दे रहा था, हमेशा के लिए ख़ामोश हो गया। भागू उसकी मौत पर दिखाई न देने वाले ख़ून के आँसू बहाने लगा और कौन उसकी मौत पर आँसू बहाता। कोई उसका वहाँ अपना होता तो आँसू बहाता। एक भागू ही था जो सबका रिश्तेदार था। सब के लिए उसके दिल में दर्द था। वो सबकी ख़ातिर रोता और कुढ़ता था... एक दिन वह परमेश्वर ईसा मसीह के पास गया, उनके सामने झुककर आग्रह किया कि सभी इंसानों के गुनाह के बदले वो उसे दुनिया से उठा ले पर इंसानों को बख़्श दे।

उसी दिन शाम के क़रीब भागू मेरे पास दौड़ा दौड़ा आया। साँस फूली हुई थी और वो एक दर्दनाक आवाज़ से कराह रहा था। बोला, “बाबूजी... ये कोन्टीन तो नरक है। नरक। पादरी लाबे इसी क़िस्म की नरक का नक़्शा खींचा करता था...”

मैंने कहा, “हाँ भाई, ये नरक से भी बढ़ कर है... मैं तो यहाँ से भाग निकलने की तरक़ीब सोच रहा हूँ... मेरी तबीअत आज बहुत ख़राब है।”

“बाबूजी इससे ज़्यादा और क्या बात हो सकती है... आज एक मरीज़ जो बीमारी के ख़ौफ़ से बेहोश हो गया था, उसे मुर्दा समझ कर किसी ने लाशों के ढेरों में जा डाला। जब पेट्रोल छिड़का गया और आग ने सबको अपनी लपेट में ले लिया, तो मैंने उसे आग शोलों में हाथ पाँव मारते देखा। मैंने कूद कर उसे उठा लिया। बाबूजी! वो बहुत बुरी तरह झुलसा गया था... उसे बचाते हुए मेरा दायाँ बाज़ू बिल्कुल जल गया है।”

मैंने भागू का बाज़ू देखा। उस पर पीली पीली चर्बी नज़र आ रही थी। मैं उसे देखते हुए बिफ़र पड़ा। मैंने पूछा, “क्या वो आदमी बच गया है। फिर...?”

“बाबूजी... वो कोई बहुत शरीफ़ आदमी था। जिसकी नेकी और शरीफ़ी (शराफ़त) से दुनिया कोई फ़ायदा न उठा सकी, इतने दर्द की हालत में उसने अपना झुलसा हुआ चेहरा ऊपर उठाया और अपनी मरियल सी निगाह मेरी निगाह में डालते हुए उसने मेरा शुक्रिया अदा किया।”

“और बाबूजी...” भागू ने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, “उसके कुछ अर्से बाद वो इतना तड़पा, इतना तड़पा कि आज तक मैंने किसी मरीज़ को इस तरह जान तोड़ते नहीं देखा होगा... उसके बाद वो मर गया। कितना अच्छा होता जो मैं उसे उसी वक़्त जल जाने देता। उसे बचा

कर मैंने उसे बहुत दुख सहने के लिए ज़िंदा रखा और फिर वो बचा भी नहीं। अब उन्हीं जले हुए बाजुओं से मैं फिर उसे उसी ढेर में फेंक आया हूँ..."

इसके बाद भागू कुछ बोल न सका। दर्द की टीसों के दर्मियान उसने रुकते रुकते कहा, "आप जानते हैं... वो किस बीमारी... से मरा? प्लेग से नहीं।... कोन्टीन से... कोन्टीन से!"

हालाँकि इस नरक जैसे माहौल में भी लोगों को जितना हो सके राहत का सामान पहुँचाया जा रहा था पर आधी रात के समय जब उल्लू भी बोलने से हिचकिचाते थे, माँओं, बीबीयों, बहनों और बच्चों की चीख़ों की आवाज़ शहर में एक अजीब सा दर्दनाक माहौल पैदा करती थी। जब मेरे जैसे सही-सलामत लोगों के सीनों पर मनों बोझ रहता था, तो उन लोगों की हालत क्या होगी जो घरों में बीमार पड़े थे और जिन्हें हर तरफ़ से मायूसी ही दिखाई देती थी। और उसके ऊपर वो क्वारंटीन के मरीज़, जिन्हें मायूसी की हद से गुज़र कर यमराज दिखाई दे रहा था, वो ज़िंदगी से यूँ लिपटे हुए थे, जैसे किसी तूफ़ान में कोई किसी पेड़ की चोटी से लिपटा हुआ हो, और पानी की तेज़ लहरें बढ़ कर उस चोटी को भी डुबो देने की ख़्वाहिश रख रखी हो।

मैं उस रोज़ वहम की वजह से क्वारंटीन भी न गया। किसी ज़रूरी काम का बहाना कर दिया। हालाँकि मेरा मन बहुत परेशान था, क्यूँकि ये बहुत मुम्किन था कि मेरी मदद से किसी मरीज़ को फ़ायदा पहुँच जाता। मगर इस ख़ौफ़ ने जो मेरे दिल-ओ-दिमाग़ पर दबदबा बनाया था, उसने मुझे ज़ंजीर में बांध रखा था। शाम को सोते वक़्त मुझे सूचना मिली कि आज शाम क्वारंटीन में क़रीब पाँच सौ से ज़्यादा मरीज़ पहुँचे हैं।

मैं अभी अभी पेट को जला देने वाली गर्म काफ़ी पी कर सोने ही वाला था कि दरवाज़े पर भागू की आवाज़ आई। नौकर ने दरवाज़ा खोला तो भागू हाँफ्ता हुआ अंदर आया। बोला, "बाबू जी... मेरी बीवी बीमार हो गई... उसके गले में गिलटियाँ निकल आई हैं... ख़ुदा के वास्ते उसे बचाओ ...उसकी छाती पर डेढ़ साला बच्चा दूध पीता है, वो भी ख़त्म हो जाएगा।"

बिना किसी हमदर्दी का इज़हार करते हुए, मैंने उससे पूछा, "इससे पहले क्यूँ न आ सके...क्या बीमारी अभी अभी शुरू हुई है?"

"सुबह मामूली बुख़ार था... जब मैं कोन्टीन गया..."

"अच्छा... वो घर में बीमार थी। और फिर भी तुम क्वारंटीन गए?"

"जी बाबूजी..." भागू ने काँपते हुए कहा। "वो बिल्कुल मामूली तौर पर बीमार थी। मैंने समझा कि शायद दूध चढ़ गया है... इस के सिवा और कोई तक्लीफ़ नहीं... और फिर मेरे दोनों भाई घर पर ही थे... और सैकड़ों मरीज़ कोन्टीन में बेबस..."

“तो तुम मरीज़ों के प्रति अपनी हद से ज़्यादा मेहरबानी और क़ुर्बानी के कारण उनकी बीमारी को अपने घर ले ही आए न। मैं न तुमसे कहता था कि मरीज़ों के इतना क़रीब मत रहा करो... देखो मैं आज इसी वजह से वहाँ नहीं गया। इसमें सब तुम्हारा क़ुसूर है। अब मैं क्या कर सकता हूँ। तुम जैसे जाँबाज़ को अपनी जाँबाज़ी का मज़ा भुगतना ही चाहिए। जहाँ शहर में सैकड़ों मरीज़ पड़े हैं...”

भागू ने आग्रह पूर्वक कहा, “मगर परमेश्वर इसु मसीह...”

“चलो हटो... बड़े आए कहीं के... तुमने जान-बूझ कर आग में हाथ डाला। अब उसकी सज़ा मैं भुगतूँ? क़ुर्बानी ऐसे थोड़े ही होती है। मैं इतनी रात को तुम्हारी कुछ मदद नहीं कर सकता...”

“मगर पादरी लाबे...”

“चलो... जाओ... पादरी लाम, आबे के कुछ होते...”

भागू सर झुकाए वहाँ से चला गया। उसके आध घंटे बाद जब मेरा ग़ुस्सा कम हुआ तो मैं अपनी हरकत पर शर्मिंदा होने लगा। मैं अकलमंद कहाँ का था जो बाद में परेशान हो रहा था। मेरे लिए यही यक़ीनन सबसे बड़ी सज़ा थी कि अपनी तमाम ख़ुद्दारी को ताक पर रखते हुए भागू के सामने अपने पिछले रवैए पर अफ़सोस जताते हुए उसकी पत्नी का इलाज पूरा जी जान से करूँ। मैंने जल्दी जल्दी कपड़े पहने और दौड़ा दौड़ा भागू के घर पहुँचा... वहाँ पहुँचने पर मैंने देखा कि भागू के दोनों छोटे भाई अपनी भाभी को चारपाई पर लिटाए हुए बाहर निकाल रहे थे... मैंने भागू से पूछा, "इसे कहाँ ले जा रहे हो?" भागू ने आहिस्ता से जवाब दिया, “कोन्टीन में...”

“तो क्या अब तुम्हारे हिसाब से क्वारंटीन दोज़ख़ नहीं... भागू?”

“आपने जो आने से इन्कार कर दिया, बाबू जी... और चारा ही क्या था। मेरा ख़याल था, वहाँ हकीम की मदद मिल जाएगी और दूसरे मरीज़ों के साथ उसका भी ख़याल रखूँगा।”

“यहाँ रख दो चारपाई... अभी तक तुम्हारे दिमाग़ से दूसरे मरीज़ों का ख़याल नहीं गया...? बेवक़ूफ़...”

चारपाई अन्दर रख दी गई और मेरे पास जो भी सबसे अच्छी दवा थी, मैंने भागू की बीवी को पिलाई और फिर मैं अपने उस दुश्मन से मुक़ाबला करने लगा जिसका नाम था प्लेग। भागू की बीवी ने आँखें खोल दीं।

भागू ने एक भावुक अन्दाज़ में, “आपका एहसान सारी उम्र न भूलूँगा, बाबूजी।”

मैंने कहा, “मुझे अपने पिछले व्यवहार पर बहुत अफ़सोस है भागू... ईश्वर तुम्हें तुम्हारी सेवा का फल तुम्हारी बीवी को ठीक करने की सूरत में दे।”

उसी वक़्त मैंने अपने दुश्मन बीमारी को अपना आख़िरी तिकड़म इस्तेमाल करते देखा। भागू की बीवी के लब फड़कने लगे। नब्ज़ जो कि मेरे हाथ में थी, कम होकर कंधे की तरफ़ सरकने लगी। उसकी बीमारी जीत रही थी मैं हार रहा था। मैं चारों खाने चित हो रहा था। मैंने शर्मिंदगी से सर झुकाते हुए कहा, "भागू! बदनसीब भागू! तुम्हें अपनी क़ुर्बानी का ये अजीब सिला मिला है... आह!"

भागू फूट फूट कर रोने लगा।

वो नज़ारा कितना दर्दनाक था, जबकि भागू ने अपने बिलबिलाते हुए बच्चे को उसकी माँ से हमेशा के लिए अलग कर दिया और मुझे अफ़सोस के साथ लौटा दिया।

मेरा ख़याल था कि अब भागू अपनी दुनिया में अंधेरा पाकर किसी का ख़याल न करेगा... मगर उसे अगले रोज़ फिर मैंने बढ़ चढ़ कर मरीज़ों की सेवा करते देखा। उसने सैकड़ों घरों को बेसहारा होने से बचा लिया... और अपनी ज़िंदगी को ग़ैरज़रूरी समझा। मैंने भी भागू से प्रेरणा लेकर मेहनत से काम किया। क्वारंटीन और हस्पतालों से मुक्त होने के बाद अपने बचे हुए समय में मैं शहर के ग़रीब तब्क़े के लोगों के घर-घर गया, जो कि नाले किनारे गंदगी में होने की वजह से बीमारी के घर में बसे हुए थे।

कुछ ही दिनो में माहौल बीमारी से बिलकुल मुक्त चुका था। शहर को बिल्कुल धो डाला गया था। चूहों का कहीं नाम-ओ-निशान दिखाई न देता था। सारे शहर में सिर्फ़ एक-आध केस होता जिसकी तरफ़ फ़ौरन ध्यान दिए जाने पर बीमारी के बढ़ने का कोई उम्मीद बाक़ी न रही।

शहर में कारोबार ने अपनी हालत पहले जैसे सामान्य इख़्तियार कर ली, स्कूल, कॉलेज और दफ़्तर खुलने लगे।

एक बात जो मैंने शिद्दत से महसूस की, वो ये थी कि बाज़ार में गुज़रते वक़्त चारों तरफ़ से उंगलियाँ मुझीं पर उठतीं। लोग एहसानमंद निगाहों से मेरी तरफ़ देखते। अख़बारों में तारीफ़ के साथ मेरी तस्वीर छपी। उस चारों तरफ़ से हो रही तारीफ़ की बौछार ने मेरे दिल में कुछ गुरूर सा पैदा कर दिया।

आख़िर एक बड़ा शानदार जलसा हुआ जिसमें शहर के बड़े बड़े रईस और डॉक्टर आमंत्रित किए गए। वज़ीर-ए-बलदियात ने उस जलसे की अध्यक्षता की। मुझे अध्यक्ष के बग़ल में बिठाया गया, क्यूँकि वो दावत मेरे ही सम्मान में दी गई थी। हारों के बोझ से मेरी गर्दन झुकी जाती थी और हमारा व्यक्तित्व बहुत ख़ास मालूम होता था। पर ग़ुरूर निगाह से मैं कभी उधर देखता कभी इधर... मानवता की सेवा करने के लिए कमिटी, मेरा धन्यवाद करते हुए मुझे एक हज़ार एक रुपये का इनाम दे रही थी।

जितने भी लोग मौजूद थे, सबने मेरे सहकर्मियों और ख़ासकर मेरी तारीफ़ की और कहा कि पिछली महामारी के आफ़त में जितनी जानें मेरी दिन-रात मेहनत और कोशिश से बची हैं, उनका शुमार नहीं। मैंने न दिन को दिन देखा, न रात को रात, अपनी ज़िंदगी को क़ौम की ज़िंदगी समझा और अपने धन को अपने क़ौम का धन, महामारी वाले क्षेत्रों में पहुँचकर मरते हुए मरीज़ों इलाज किया, दवा पिलाई!

वज़ीर-ए-बलदियात ने मेज़ के बाएँ पहलू में खड़े हो कर एक पतली सी छड़ी हाथ में ली और मौजूद लोगों से बात करते हुए उनका ध्यान दिवार पर लटके नक़्शे की तरफ़ दिलाया जिसमें रोज़ सेहतमंद होते मरीज़ों का ग्राफ़ ऊपर की ओर बढ़ता जा रहा था। आख़िर में उन्होंने नक़्शे में वो दिन भी दिखाया जिस दिन मेरे निगरानी में चौव्वन (54) मरीज़ रखे गए और वो सारे के सारे सेहतमंद हो गए।। यानी नतीजा सौ फ़ीसदी कामयाबी का रहा और वो मेरी सफलता की लकीर अपनी सर्वोच्च स्थान तक पहुँच गई।

इसके बाद वज़ीर-ए-बलदियात ने अपने भाषण में मेरी हिम्मत को बहुत कुछ सराहा और कहा कि लोग ये जान कर बहुत ख़ुश होंगे कि बख़्शी जी अपनी सेवा के बदले लेफ़्टीनेंट कर्नल बनाए जा रहे हैं।

पूरा हॉल तारीफ़ की आवाज़ों और तालियों से गूँज उठा।

उन ही तालियों के शोर के बीच मैंने अपनी गुरूर से भरी गर्दन को उठाया। कमिटी के अध्यक्ष और मौजूद लोगों का शुक्रिया अदा करते हुए मैंने एक लम्बा चौड़ा भाषण दिया, जिसमें तमाम बातों के अलावा मैंने बताया कि डॉक्टरों का ध्यान सिर्फ़ हस्पताल और क्वारंटीन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि ग़रीब तब्क़े के लोगों के घरों की तरफ़ भी उनका ध्यान उतना ही था। वो लोग अपनी मदद करने के काबिल बिल्कुल नहीं थे और वही ज़्यादा-तर इस महामारी का शिकार हुए। मैं और मेरे सहकर्मियों ने बीमारी पनपने वाली सही जगह को तलाश किया और अपना ध्यान बीमारी को जड़ से उखाड़ फेंकने में लगा दिया। क्वारंटीन और हस्पताल से छूटकर हमने रातें उन ही ख़ौफ़नाक जगहों में गुज़ारीं।

उसी दिन जलसे के बाद जब मैं बतौर एक लेफ़्टीनेंट कर्नल के अपनी गुरूर से लदी गर्दन को उठाए हुए, हारों से लदा फंदा, लोगों का दिया एक हज़ार एक रुपये का वो छोटा सा तोहफ़ा जेब में डाले घर पहुँचा, तो मुझे एक तरफ़ से आहिस्ता सी आवाज़ सुनाई दी, “बाबू जी... बहुत बहुत मुबारक हो।”

और भागू ने मुबारकबाद देते वक़्त वही पुराना झाड़ू क़रीब ही के गंदे हौज़ के एक ढकने पर रख दिया और दोनों हाथों से गमछा खोल दिया। मैं भौंचक्का सा खड़ा रह गया।

“तुम हो...? भागू भाई!” मैंने बड़ी मुश्किल से बोला... “दुनिया तुम्हें नहीं जानती भागू, तो न जाने... मैं तो जानता हूँ। तुम्हारा यीशु तो जानता है... पादरी लाम, आबे के बेमिसाल चेले...तुझ पर ख़ुदा की रहमत हो...!"

उस वक़्त मेरा गला सूख गया। भागू की मरती हुई बीवी और बच्चे की तस्वीर मेरी आँखों में खिंच गई। हारों के बोझ से मुझे मेरी गर्दन टूटती हुई मालूम हुई और पैसों के बोझ से मेरी जेब फटने लगी। और... इतनी इज़्ज़त हासिल करने के बावजूद मैं बे-तौक़ीर हो कर इस क़द्र-शनास दुनिया का मातम करने लगा!

...

(अनुवादक संजीव कुमार TISS में प्रोग्राम मैनेजर के पद पर कार्यरत हैं और डॉ. जिया उल हक़, मौलाना आज़ाद उर्दू यूनिवर्सिटी में असिसटेंट प्रोफ़ेसर के पद पर कार्यरत हैं। संजीव अपने साथियों के साथ इस कहानी का अंग्रेजी और मराठी में भी अनुवाद कर रहे हैं।)

(इस कहानी को देवनागरी में रेख़्ता ने भी प्रकाशित किया है।)